इकाई 22 पाश्चात्य ज्ञान और भारतीय मानस

इकाई की रूपरेखा

22.0 उद्देश्य

इस इकाई से आप :

- औपनिवेशिक परिवेश में भारतीय चिंतन के प्रमुख सरोकारों,
- पाश्चात्य-ज्ञान के प्रभाव की मुख्य धाराओं, और
- उपरोक्त प्रभाव से जुड़ी समस्याओं का परिचय प्राप्त करेंगे।

22.1 प्रस्तावना

पिछली इकाइयों के अंतर्गत आप यह पढ़ चुके हैं कि भारतवर्ष मुगल साम्राज्य के विध्वंस से एक औपनिवेशिक परिवेश की स्थापना की दिशा में कैसे बढ़ा। इस विकासक्रम ने भारतीय मानस को अपनी संस्कृति एवं समाज के बारे में पुनर्विचार और नई सामाजिक शक्तियों की ओर समुचित प्रतिक्रिया के लिए बाध्य किया, यह इस इकाई में हमारी विवेचना का विषय है।

22.2 संकट के बाद

मुगल साम्राज्य के संकटों के क्रम में परिवर्तित स्थिति का सामना करने की आवश्यकता ने समूचे भारत में अस्मिता की परिभाषा की आकांक्षा को जन्म दिया। इस नई राजनीतिक परिस्थिति ने भारतीय मानस के सामने पुनर्परिभाषा और समायोजन की समस्याएँ रखीं।

इन समस्याओं को आरंभिक काल में वर्ग एवं परंपरा से प्राप्त साधनों से सुलझाया जाता था। इस आवश्यकता के फलस्वरूप अनेक प्रतिस्पर्धी समुदाय और नेतृत्व-समूह उभरे, जिनके सार्वजनिक विवादों ने धार्मिक एवं सांस्कृतिक अस्मिता-बोध को बल दिया।

इस प्रसंग में हम बंगाल का एक उदाहरण पाते हैं, जहाँ फैराजियों, मुहमदियों के आंदोलन ने अनेक रूपों में, इस्लाम की विगत "विशुद्धता" की ओर लौटने का समर्थन किया। इन

आंदोलनों की ओर आकर्षित होने वाले किसानों व दस्तकारों की विशेष सामाजिक स्थिति के चलते, ये आंदोलन अनिवार्यतः आर्थिक संघर्षों की दिशा में मुड़े। इस प्रकार किसान जमींदार संघर्षों को एक धार्मिक रंगत मिली। इस संघर्ष में एक महत्वपूर्ण व्यक्तित्व था तीतू-मीर जिसके विद्रोह को सरकार-विरोधी स्वरूप लेते ही कुचल दिया गया।

बहरहाल, उपरोक्त राजनीतिक-आर्थिक पहलुओं से परे, इन विविध समूहों के बीच उपजे विवाद एवं विभेद भी उतने ही महत्वपूर्ण थे। इन विवादों ने विगत "विशुद्धता" की ओर वापसी में निहित धार्मिक आस्था संबंधी प्रश्नों को उभारा और स्पष्ट किया। पंजाब में सिख धर्म के नामधारी और निरंकारी अनुयायियों के बीच विवृत्तियों-चर्चाओं ने ऐसी ही भूमिका निभाई। उड़ीसा और मध्यप्रदेश में सत्यमहिमा धर्म और सतनामियों ने निचली जातियों व आदिवासियों के बीच धार्मिक पवित्रता संबंधी प्रश्नों को केंद्रित अभिव्यक्ति दी। दक्षिण भारत के नाडार समुदाय ने अपनी अस्मिता के परिज्ञान एवं प्रतिष्ठान के लिए विकल्प रूप में ईसाई धर्म अपनाया।

नाडार ईसाइयों के अलावा अन्य सभी आंदोलनों ने अपने ही धर्म के केन्द्रीय प्रश्न उठाये। इनके अधीन सामुदायिक-लामबंदी की प्रक्रिया को बल देने का प्रयास किया, निरंकारियों के बीच मिलने वाले सामुदायिक भंडारे (लंगर) से लेकर बंगाल, बिहार के मुसलमानों के बीच सामूहिक प्रार्थना (नमाज) तक अनेक तरीके अपनाते हुए। समाज में महिलाओं की स्थिति, जाति-व्यवस्था और पूजा-विधि जैसे अनेक मसलों पर चर्चा होती थी और उन्हें अतीत के व्यवहारों व "पवित्रता" संबंधी विचारों के उल्लेख से सुलझाने का प्रयास किया जाता था। इस प्रकार, न केवल शहरी शिक्षा प्राप्त मध्यमवर्गीय सुधारकों व चिंतकों (जिनकी आगे चर्चा की गई है), बल्कि सामान्य जनसमुदाय के जीवन को भी सांस्कृतिक अस्मिता से जुड़े प्रश्न उद्वेलित कर रहे थे। इन प्रश्नों का अभिव्यक्ति-रूप अक्सर धार्मिक शब्दावली से प्रभावित होता था।

22.3 एक नई मानसिकता

इस तथ्य को व्यापक रूप से मान्यता दी गई है कि उन्नीसवीं सदी में उभरने वाली नई, आधुनिक भारतीय संस्कृति एवं चेतना के निर्माण में पाश्चात्य शिक्षा और बौद्धिक आदान-प्रदान का प्रभाव एक सुदीर्घ समीक्षाकारी शक्ति था। इस नई पुनर्जागरण-कालीन चेतना के घटक तत्व सेक्यूलर और धार्मिक दोनों ही थे, तथा परंपरा और आधुनिकता का समन्वय उनका लक्ष्य था। इसके फलस्वरूप एक नया दृष्टिकोण, एक नया मूल्य-समुच्चय सामने आया जिसका समावेश हम धार्मिक अनुभवों और सुधार प्रयासों के साथ-साथ सेक्यूलर साहित्यिक अभिव्यक्तियों में भी पाते हैं। इसीलिए एकेश्वरवादी धर्म में, कर्मकांड की अपेक्षा ईश्वर में, धार्मिक आचारों की अपेक्षा स्नेह और श्रद्धा में अधिक अटूट आस्था के दर्शन हम करते हैं। इस नई मनोवृत्ति का प्रतिबिंबन हम साहित्य में भी पाते हैं, जो सूक्ष्मतर भावनात्मक अनुभवों, मानवीय चेतना की जय-गाथाओं और स्त्री-पुरुष संबंधों के अधिक सहानुभूतिशील बोध की ओर प्रवृत्त हुआ। न्याय एवं विवेक की अवधारणाओं को व्यापक मान्यता मिली क्योंकि समकालीन बौद्धिकों और सिद्धांतकारों ने विश्व के एक अधिक न्यायसंगत, विवेकपूर्ण और समीक्षात्मक पुनर्व्यवस्थापन का पक्ष लिया। वह अनुभव-पुंज, जिसे पुनर्जागरण की सामूहिक संज्ञा दी जाती है, उन्नीसवीं सदी के आरंभ में बंगाल में शुरू हुआ और बाद में अन्य स्थानों पर। जागरूकता के विकास-क्रम में हम क्षेत्रीय विभिन्नता पाते हैं लेकिन विविधता में अंतर्व्याप्त एक सार्व भावनात्मक अंतर्वस्तु है, जिसका बोध क्षेत्रीय साहित्य की अभिवृद्धि से होता है।

पाश्चात्य प्रभाव और भारतीय पुनर्जागरण का अंतःसंबंध अत्यधिक विवाद का विषय बना है। एक प्रकार की तर्कना के अनुसार पश्चिम के सभ्यता-अभियान ने निष्क्रियता और पतनशीलता के गर्त में पड़े भारतीय समाज को आधुनिकता की दिशा में प्रवृत्त किया। एक ईसाई मिशनरी, जे.एन. फारकुहर (J.N. Farquhar) के अनुसार, "उत्प्रेरक शक्तियों का संबंध मुख्यतया पश्चिम से है, अंग्रेजी सरकार, अंग्रेजी शिक्षा और साहित्य, ईसाई धर्म, प्राच्यविद्या संबंधी अनुसंधान, यूरोपीय विज्ञान और दर्शन, तथा पाश्चात्य सभ्यता के

भौतिक तत्व'' एक दूसरी विचार सारणी के अनुसार पाश्चात्य विचार और प्रशासनिक व्यवहार कठोर एवं जटिल भारतीय वास्तविकताओं के सापेक्ष कुछ अधिक प्रभावी सिद्ध नहीं हो सके। परिवर्तन की प्रक्रिया एक प्रकार आंशिक और अपूर्ण ही रही। एक तीसरा मत यह है कि पाश्चात्य विचार और व्यवहार भारतीय समाज को उपनिवेश बनाने के साधन मात्र थे, जिनसे एक-एक मिथ्यापूर्ण और सतही आधुनिकता भर को ही जन्म दिया जा सकता था।

यह प्रक्रिया उससे कहीं अधिक जटिल थी जैसा कि उपरोक्त किसी भी व्याख्या से आभास मिलता है। इस बात पर बल दिया जाना चाहिए कि भारत में समीक्षाशील जागरूक चेतना का उदय सेक्यूलर-सांस्कृतिक परिघटना मात्र नहीं बल्कि एकाधिक दृष्टियों से धार्मिक पुनर्रचना–अभियान भी था। सामाजिक-धार्मिक स्वरूप और साहित्यिक-कलात्मक आंदोलन एक जीवंत समग्रता बनते थे। दूसरी महत्वपूर्ण बात यह है कि पुनर्जागरण कालीन संस्कृति गहन रूपों में स्वदेशी थी, भारत में आधुनिकता पश्चिम के प्रतिरूपों की लुंज-पुंज और विद्रूप अनुकृति मात्र नहीं थी। टैगोर की दृष्टि के अनुसार, यह एक ऐसा समन्वय थी जिसके अधीन शाश्वत, परिवर्तनशील भारतीय सभ्यता ने नये तत्वों को निपुणता से रचा-बसा लिया। आधुनिक ज्ञान के प्रकाश में भारत ने अपने अतीत पर आलोचनात्मक दृष्टि डाली और उस अतीत एवं बाह्य विश्व की श्रेष्ठ परंपराओं से प्राप्त समुचित तत्वों के समन्वय से अपनी पुनर्रचना की। इस प्रक्रिया का कोई पूर्ववर्ती स्वरूप न हो, ऐसा नहीं है। मध्यकालीन भक्ति-आंदोलन जैसे अंतरावलोकनमूलक अतीत में स्थान ले चुके थे। लेकिन पुनर्जागरण आंदोलन ने ऐसे तत्वों का अंत:संयोजन किया जो नये और प्रत्यक्ष रूपों में पाश्चात्य थे।

भारतीय जनमानस पर पाश्चात्य प्रभाव ऐसी संचालक शक्ति था, जिसने आत्मान्वेषण की आलोचनात्मक वृत्ति उभारते हुए भारतीय समाज की प्रभुत्वशाली प्रवृत्तियों को सतह पर ला दिया। इसलिए कंपनी के राजनीतिक शासन की स्थापना के साथ बने नये राजनीतिक एवं सामाजिक परिवेश के संदर्भ में उपरोक्त नई चेतना का क्रमिक विकास समझने का प्रयास आवश्यक है। पाश्चात्य प्रभाव, रानाडे के शब्दों में, विदेशी उर्वरक, शिक्षा-व्यवस्था, शैक्षिक एवं सांस्कृतिक संगठनों, अदालतों, मिशनरी संस्थाओं और प्रेस के माध्यम से संचारित हुआ था। इन संस्थाओं के कार्यों का सीधा प्रतिफल था पाश्चात्य विचारों का प्रचार-प्रसार और एक भिन्न परिवेश में भारतीय मध्यम वर्ग जैसी एक नई सामाजिक श्रेणी का उदय। इन सांगठनिक रूपों के अलावा ब्रिटिश प्रशासन से पड़ने वाला ''आकाशीय प्रभाव'' भी था, जिसका उल्लेख सैयद अब्दुल लतीफ करते हैं। परिवर्तन के संवाहक संगठनों के अलावा अन्य रीतियों और पश्चिम के माध्यमों से भी पाश्चात्य विचारों ने जनमानस में प्रवेश किया। इन परोक्ष माध्यमों में सर्वाति महत्वपूर्ण था पाश्चात्य साहित्य जो उन्नीसवीं सदी के मध्यकाल तक शहरी मध्यम वर्गों में बहुत लोकप्रिय हो चला था।

उपरोक्त विवेचन का आशय यह नहीं कि पाश्चात्य प्रभावों के ही कारण भारतीय समाज में परिवर्तन आया। वह प्रभाव एक ऐसा तत्व भर था जिसने परिवर्तनों को तेज कर दिया जो भारत के हिंदू और मुस्लिम जनसमुदाय को प्रभावित कर रहे थे। म.गो. रानाडे की दृष्टि में, ''किसी विजातीय प्रतिरोपित पौधे के फूलने-फलने की संभावनाएँ तब तक नहीं बनतीं, जब तक कि उस कोमल पौधे की जड़ें जिसपर उसका प्रतिरोपण किया जाना है, अपनी स्वदेशी भूमि में गहरे तक न फैल चुकी हों। इस प्रकार जब जीवंत वृक्ष को पोषण और पानी मिलता है, विदेशी उर्वरक उसकी सुरभि और सुंदरता की अभिवृद्धि करता है।''

22.4 नई मानसिकता के आरंभ-बिन्दु

पाश्चात्य चिंतन से भारतीय जनमानस का गहरा और सच्चा संपर्क 19वीं सदी के तीसरे-चौथे दशक तक नहीं हुआ था, जब कलकत्ता में दो प्रतिस्पर्धी समाज-मंडल अस्तित्व में आये–द्वारकानाथ टैगोर और राजा राममोहन राय के नेतृत्व में ''प्रगतिशील'' मंडल और राधाकांत देव के नेतृत्व में ''परंपरावादी'' मंडल। कलकत्ता के

सामाजिक-बौद्धिक इतिहास में, "पुनर्जागरण" का आभास कराने वाला यह चरण तब शुरू हुआ जब राममोहन ने 1816 में कलकत्ता को अपना आवास बना लिया। इसके पहले 1805 के आसपास राममोहन राय ने मुर्शिदाबाद से अपनी फारसी पुस्तक तुहाफतुल मुवाहिदीन प्रकाशित की थी, जिसने व्यापक विवादों को उभारा था। विवादों के ब्योरों में जाना हमारे लिए आवश्यक नहीं, फिर भी यह बात ध्यान में रखना महत्वपूर्ण है कि विवादकों ने तर्क एवं विवेक का सहारा लेने का आग्रह किया। विशेषकर राममोहन का जोर आगमनात्मक तर्कना पर था: "अनेकानेक ऐसी चीजें हैं, उदाहरण के लिए, यूरोपीय जनसमुदाय के अनेक अद्भुत आविष्कार और जादूगरों के करिश्में, जिनके कारण निश्चय ही ज्ञात नहीं है और जो मानवीय बोध-सामर्थ्य के परे प्रतीत होते हैं। लेकिन एक सूक्ष्म अंतर्दृष्टि अथवा समुचित निर्देश के अधीन उन कारणों का संतोषजनक ज्ञान प्राप्त किया जा सकता है।" यह आगमनात्मक तर्कना प्रबुद्ध व्यक्तियों के लिए अतिभौतिक घटनाओं से जनित भ्रांति से बचाव का समुचित साधन बनती है। इस प्रकार राममोहन वैज्ञानिक पर्यवेक्षण के महत्व का बहुत दूर तक बोध कर चुके थे। उन्होंने "दिव्यज्ञान" संबंधी सभी अवधारणाओं को प्रश्नाधीन बनाया, उन्हें असाध्य घोषित करते हुए। इन विवादों के प्रसंग में महत्वपूर्ण बात यह है कि राममोहन राय ने अभी तक लार्क अथवा न्यूटन के विचारों को पढ़ा–अपनाया नहीं था।

दूसरी ओर जुड़ी हुई उल्लेखनीय बात यह है कि विवादकों ने एक-दूसरे पर समाज-कल्याण की उपेक्षा का आरोप लगाया और इस प्रकार उपयोगिता के विचार से अपनी परोक्ष प्रतिबद्धता व्यक्त की। राममोहन ने उन सभी धार्मिक आचारों की भर्त्सना की जो सामाजिक जीवन के लिए घातक थे, सामाजिक दशा में सुधार की दिशा में ले जाने वाले नहीं थे। उनकी दृष्टि से, धर्म की महत्ता परलोक में संभावित दंड-भय में निहित है।

इस प्रकार बंगाल में हेतुवाद की धारा, एक अर्थ में, उस सतही पाश्चात्य प्रभाव से पहले की है, जिसने मुख्यतः एक उत्प्रेरक के रूप में परिवर्तन की गति को तेज बनाया।

बोध प्रश्न 1

1) मुगल साम्राज्य के पतन में अस्मिता के संकट पर विजय पाने में धर्म किस प्रकार सहायक बना?

....
....
....
....

2) बंगाल में हेतुवाद की धारा ने परिवर्तन की गति को कैसे तेज बनाया?

....
....
....
....

22.5 पाश्चात्य ज्ञान के प्रभाव

संबद्ध हेतुवाद के उदीयमान नीत्याचार ने पहली बार बंगाल में कलकत्ता के हिंदू कॉलेज (1817) के रूप में सांस्थानिक स्वरूप लिया। कुछ संपन्न बंगालियों ने, जिनमें परंपरावादी भी थे, गैर-अधिकारी यूरोपियों के साथ मिलकर इस कॉलेज की स्थापना की थी। कॉलेज के पितातुल्य संस्थापक माने जाने वाले राममोहन ने स्वयं को जानबूझ कर अलग-थलग रखा, इस डर से कि संरक्षक पद संभालने वाले राधाकांत देव जैसे परंपरावादी हिंदुओं का विरोध और न बढ़ जाए। लेकिन उदारवादी विचारों से प्रभावित बंगाली युवकों के सहज, संघजात उग्रवादी रूझान को नियंत्रित करना शायद ही संभव था, वे कॉलेज के एक शिक्षक

हेनरी लुई विवियन देरोजियो का अनुसरण करने लगे। देरोजियो के निष्कासन से भी हेतुवाद की उमड़ती लहर को रोका नहीं जा सका जो अधिकाधिक शक्ति से अपना प्रभाव छोड़ती रही।

हिंदू कॉलेज की स्थापना के बाद ही स्कूल बुक सोसाइटी और स्कूल सोसाइटी का गठन हुआ जिसने कलकत्ता में स्कूल शिक्षा की स्थिति सुधारने में केंद्रीय भूमिका निभाई। उन्होंने नई पाठ्यपुस्तकों का प्रकाशन किया वार्षिक परीक्षा प्रणाली वाले नये प्रकार के स्कूल खोले और इस प्रकार एक नई शिक्षा व्यवस्था की आधारशिला रखी। एक भिन्न प्रमुखता के साथ अध्ययन के विषयों का नया चयन किया गया: अंग्रेज़ी, गणित, भूगोल तथा प्राकृतिक विज्ञान। बिशप कॉलेज, ओरियंटल सेमिनारी, कलकत्ता मेडिकल कॉलेज जैसे उच्च शिक्षा संस्थानों की स्थापना तथा भारतीय समाचार पत्रों की शुरुआत ने एक नये, विवेकसम्मत और अधिक आलोचनात्मक जनमत के निर्माण में व्यापक योगदान किया।

बंबई में एलफिंस्टन कॉलेज ने वैसी ही भूमिका निभाई जो अनेक दृष्टियों से कलकत्ता के प्रेसिडेंसी कॉलेज के समतुल्य थी। इसकी शुरुआत गवर्नर एलफिंस्टन के लिए एक स्मारक बनाने की बंबई के स्थानीय धनी नागरिकों की इच्छा से हुई। कुछ शिक्षक पदों की प्रतिष्ठा के लिए 1821 में कोष जुटाया गया। एक प्राकृतिक विज्ञान और दूसरा साहित्य से संबंधित दो अंग्रेज़ शिक्षक 1835 में भारत आये और उन्होंने एलफिंस्टन हाई स्कूल चलाया जिसे बाद में एलफिंस्टन कॉलेज का नाम दिया गया। बंबई में एक "प्रबुद्ध समुदाय" की रचना में कॉलेज ने केन्द्रीय भूमिका निभाई थी, जो पश्चिम भारत के सामाजिक और राजनीतिक आंदोलनों का आधार बनी थी। इस कॉलेज से शिक्षा प्राप्त करने वालों में थे दादाभाई नौरोजी, महादेव गोविंद रानाडे, के.टी. तैलंग, फीरोजशाह मेहता, गोपालकृष्ण गोखले, और डी.के. कर्वे। इसलिए यह आकस्मिक नहीं कि बंबई के राष्ट्रवादियों की पहली पीढ़ी एलफिंस्टन कॉलेज से ही निकली थी। मद्रास शहर में प्रेसिडेंसी कॉलेज एक महत्वपूर्ण केंद्र बन गया था। आधी सदी से अधिक समय तक पीछे छूटे रहने के बाद आठवें दशक में उत्तर भारत के मुसलमान सैयद अहमद खान के नेतृत्व में एकजुट हुए और अलीगढ़ में मुहम्मद आंग्लो-ओरियंटल कॉलेज की स्थापना की। ब्रिटिश शैली के इस निजी शैक्षिक संस्थान का लक्ष्य किसी अंग्रेजी आदर्श का प्रतिरोपण मात्र नहीं, बल्कि एक स्वदेशी स्वरूप अपनाना था।

नई शिक्षा-व्यवस्था के परिणाम दूरगामी थे। एक ओर तो इन नई संस्थानों ने परवर्ती काल में राजनीतिक भावनाओं की अभिव्यक्ति में योगदान किया, दूसरी ओर, एक नये बौद्धिक परिवेश की रचना उन्होंने तत्काल की, जिसके श्रेष्ठ प्रतिनिधि रूप हमें समकालीन साहित्य के साथ-साथ सामाजिक-धार्मिक विषयों से संबंधित समकालीन कृतियों और सार्वजनिक वक्तव्यों में मिलते हैं। पाश्चात्य साहित्य की लोकप्रियता ने स्वदेशी साहित्यिक एवं बौद्धिक कर्म को प्रभावित किया, जो हेतुवाद और स्वच्छंदतावाद की नई धाराओं को पुष्ट करने की दिशा में अधिकाधिक प्रवृत्त हुआ।

22.6 हेतुवाद की नई धारा

उन्नीसवीं सदी के बंगाल और महाराष्ट्र में वर्तमान आवश्यकताओं और उपलब्ध देशी और विदेशी दोनों ही, परंपराओं का तर्कसंगत मूल्यांकन बौद्धिक प्रयासों का प्रतीक बन गया था। राममोहन की आधुनिकतावादी चेतना इतनी सुविख्यात है कि उसका विवरण देना यहां आवश्यक नहीं। उनका समूचा क्रियाकलाप मनुष्य के स्वातंत्र्याधिकार में आस्था से अंत:संयोजित उदारवादी विचारधारा से प्रेरित था। सतीप्रथा के विरुद्ध उनके सुपरिचित वक्तव्यों में धर्मग्रंथों से उल्लेख अवश्य मिलता है, लेकिन हेतुवादी सिद्धांत ही उनकी प्रखर तर्कनाओं का सुनिश्चित आधार बनाते हैं। मानवीय मूल्यों से अनुपूरित हेतुवादी चिंतन के लिए वैसा ही सरोकार राममोहन के सामाजिक-सांस्कृतिक एवं धार्मिक विषयों से संबंधित वक्तव्यों में भी मिलता है। गणित, प्रकृति दर्शन, रसायन, शरीरक्रिया शास्त्र एवं अन्य उपयोगी विज्ञानों का समावेश करने वाली एक संबद्ध शिक्षा-प्रणाली का लक्ष्य लिए,

प्राच्यविद्या के बजाय पाश्चात्य शिक्षा को राजकीय समर्थन देने के लिए उनका सुपरिचित आग्रह और भारत में समाचार पत्रों की स्वतंत्रता के पक्ष में उनके लेख बुद्धि एवं विवेकसम्मत तर्कना में आस्था से ही अनूठे रूप में प्रेरित थे। बुद्धि एवं विवेक के लिए यह अटूट सरोकार अन्य कई व्यक्तियों में भी मिलता है। विशेष रूप से देराजियों ने अपने विद्यार्थियों को स्वतंत्रचिंतन के लिए प्रोत्साहन दिया जिसके फलस्वरूप तरुण पाश्चात्य-शिक्षा प्रभावित बंगालियों ने किसी धर्म या धार्मिक परंपरा विशेष को ही नहीं बल्कि विवेकशून्य विश्वास की परंपरा को ही प्रश्नाधीन बना दिया। तत्व बोधिनी पत्रिका के संपादक अक्षय कुमार दत्त ने कई शिक्षाप्रद पुस्तकें लिखीं, जिनमें ईश्वर के अस्तित्व का खंडन किए बिना, दत्त ने स्वयंप्रकृति रूपी महान पुस्तक के पक्ष में तर्कों का संधान किया। भारतीय धर्मों से संबंधित उनकी परवर्ती रचना, संबुद्ध अन्वेषण की चेतना के साथ धार्मिक संप्रदायों के आलोचनात्मक समानशास्त्रीय परीक्षण का प्रयास थी। उपरोक्त सभी बौद्धिक प्रयासों में काम्टे के विधयवाद और उपयोगितावादियों के सिद्धांतों ने महत्वपूर्ण प्रभाव छोड़ा था। टॉम पेन की पुस्तक एज ऑफ रीज़न और राइट्स ऑफ मैन, मैकाले के एस्सेज (निबंधसंग्रह) और मिल की रचना सब्जेक्शन ऑफ वीमेन को व्यापक रूप से पढ़ा और आत्मसात किया गया था। उनसे ही बुद्धि, न्याय, और उपयोगितावादी सरोकारों से संबंधित नई धारणाएँ प्राप्त की गई थीं। सर्वमान्य रूप में, बुद्धिसंगत न्याय का विचार भारतीय दर्शन के लिए कोई विजातीय तत्व नहीं: बुद्धि की अवधारणा वेदांतिक तथा इस्लामी दोनों ही दर्शनों का अभिन्न अंश है। लेकिन पश्चिम से आयातित बुद्धि का विचार तर्क की अपेक्षा और व्यापक है। शिक्षा प्राप्त भारतीय इस बात का बोध कर पाये कि यूरोपवासियों ने ज्ञान के संसार पर विजय पाई थी "बुद्धि के श्रमसाध्य प्रयोग की अक्षुण्णता" के कारण ही। इस प्रकार यूरोप ने भारतवासियों में पर्यवेक्षण एवं प्रयोग के माध्यम से सभी घटनाओं की आंतरिक क्रियाविधि के प्रति जिज्ञासाभाव का संचार किया। बुद्धि की प्रकृति अनुभवजन्य और वैज्ञानिक है क्योंकि वही प्रगति का पथ प्रशस्त करती है। बुद्धि का संबंध प्रगति से है और प्रगति एक सक्रिय जीवन-दर्शन का संकेत देती है। इसीलिए टैगोर ने एक ऐसे विश्व की अभ्यर्थना की "जिसमें मस्तिष्क भय-रहित हो" और "ज्ञान मुक्त हो"।

बुद्धि की अवधारणा से जुड़ा न्याय का विचार आधुनिक भारतीय संस्कृति की एक नई चारित्रिक विशेषता थी। अपनी अंतरात्मा से युक्त व्यक्ति उभर कर आया। व्यक्ति का स्वयं तथा ईश्वर के प्रति दायित्व था कि वह अंतरात्मा के अनुदेशों से बंधकर चले। इस अंतरात्मा का विस्तार धार्मिक क्षेत्र से सामाजिक विद्रोह की ओर होता है। सामाजिक विद्रोहों के विकास के साक्ष्य में हमें सैनिक विद्रोह के बाद लिखे गये अनेकानेक नाटकों—नील दर्पण, जमींदार दर्पण इत्यादि में मिलते हैं। सामाजिक-विद्रोहों का क्षेत्र उतना ही व्यापक बनता गया, जैसे-जैसे अंतरात्मा-प्रेरित बौद्धिकों ने पारंपरिक समाज के समूचे आधार की पुनर्परीक्षा की और उसमें घर कर गई विकृतियों को सुधारने का प्रयास किया। इस नैतिक चेतना प्रेरित विद्रोह ने क्रमशः राजनीतिक राष्ट्रवाद का रूप ले लिया। बंकिम भी तर्कसंगत अन्वेषण की स्थिति से उठकर गहन भावना संचालित देशप्रेम के स्तर पर आये, आनंदमठ में व्यक्त मातृभूमि के लिए ललक पर ध्यान दिया जाना चाहिए।

महाराष्ट्र के अंतर्गत इस विवेकचेतना के प्रतिनिधि रूप हमें अनेक बौद्धिकों की रचनाओं में मिलते हैं। लेकिन चिपलूंकर की निबंधमाला ही सबसे पहले उल्लेख करने योग्य है। जैसा कि बंबई के आरंभिक बौद्धिक कर्मियों के जीवनक्रम से पुष्ट होता है, नई शिक्षा के प्रभाव बहुत तेज और गहरे थे। सरदार गोपाल हरि देशमुख (1823-83) ने भारतीय समाज को पुरातन कर्मकांडों, घोर विषमताओं और महिलाओं पर आरोपित दारुण विवशताओं से मुक्त करने की आवश्यकता का पुरजोर समर्थन किया। के.टी. तेलंग ने भी समाज सुधारों के पक्ष में एक जुझारू दृष्टिकोण अपनाया। स्पेंसर और मिल जैसे पाश्चात्य सिद्धांतकारों से प्रेरणा लेते हुए उन्होंने राजनीतिक एवं सामाजिक विषयों पर व्यापक लेखनकार्य किया। म.गो. रानाडे तथा गोपाल कृष्ण गोखले भी इस नई चेतना के मूर्त रूप बने, जो उन्नीसवीं सदी के नवें दशक में महाराष्ट्र के जनमानस को अनुप्राणित कर रही थी।

22.7 एक नया स्वच्छंदतावाद

विवेक चेतना की भांति स्वच्छंदतावाद एक दूसरी विशिष्ट धारा थी जिसका प्रवाह हम भारतीय पुनर्जागरण में पाते हैं। पाश्चात्य साहित्य की सुलभता, आकर्षण, और लोकप्रियता ने स्वदेशी साहित्यकर्म को प्रभावित किया। वाल्टर स्काट, जार्ज एलियट इत्यादि की रचनाओं ने सशक्त प्रभाव छोड़ा। भारत के स्थानीय भाषा-साहित्य के स्वरूप और अंतर्वस्तु दोनों ही में इसका साक्ष्य मिलता है। गल्प, नाट्य, जीवनी एवं इतिहास, निबंध और साहित्य समीक्षा इत्यादि गद्यरूपों का विकास इसका सर्वविदित महत्वपूर्ण प्रतिफल था। नर-नारियों के ऐंद्रिक बोध और उसके बीच संबंधों की परिवर्तित प्रकृति, मानवीय चेतना पर जोर और नये कथारूपों के विशिष्ट प्रतीक चिन्ह जो स्थानीय भाषाओं, विशेषकर बंगाली, में प्रतिष्ठित हुए। इस प्रकार बंकिम की पहली औपन्यासिक कृति दुर्गेशनंदिनी (1865) और स्काट की रचना इवान हो के बीच विलक्षण समानता मिलती है। लेकिन स्वच्छंदतावाद किन्हीं सीमित अर्थों में पाश्चात्य प्रभाव मात्र नहीं बना रहा, उपन्यासकार रूमानी प्रेरणा के स्वदेशी स्रोतों की ओर भी बढ़े। पाश्चात्य अवधारणाओं ने उन परिवर्तनों की शुरुआत मात्र की थी जिनको स्त्री-पुरुष संबंधों के बदलते बोध के अधीन किन्हीं विवर्तित रूपों में आगे बढ़ाया गया। बंकिम की रचना कपालकुंडला तथा रमेश चंद्र दत्त के ऐतिहासिक उपन्यास जीवन-प्रभात (1878) और राजपूत जीवन-संख्या (1879) ने भी इस नवीन युगचेतना की पुष्टि की। 1903 के परवर्ती काल में टैगोर की रचना "चोखेर बाली" के साथ एक नई लहर आई जिसने सामाजिक-मनोवैज्ञानिक यथार्थवाद को प्रभुत्वशाली प्रवृत्ति के रूप में स्थापित किया। उनकी नायिकाएँ अपनी अस्मिता के बोध, आत्मसम्मान और उच्चविचारों के लिए आत्मोत्सर्ग की भावना से युक्त महिलाएँ थीं। बीसवीं सदी में यह लहर और सशक्त बनी। अन्य आंचलिक साहित्यों में भी इन प्रवृत्तियों के प्रतिनिधि रूप मिलते हैं। तमिल में सुब्रमण्यम् भारती की रचनाओं के साथ एक नया मोड़ आया, जिनकी कुयिलपट्टु में स्नेह और करुणा की अद्वितीय अभिव्यक्तियाँ मिलती हैं। गुजराती कविता के मूलतत्व के रूप में करुणा से साक्षात्कार नरसिंहराव दिवतिया की उत्कृष्ट कृति स्मरणसंहिता (1915) में होता है। पूर्ववर्ती युग का भक्ति आंदोलन भी ऐसी ही संवेदनाओं से संचालित था। मलयालम कवि कुमारन आशान ने ऐसी ही अनुभूतियों को अभिव्यक्ति दी है।

> प्रेम में ही सृष्टि का सृजन होता है; प्रेम ही उसका पालनहार है,
> अपने आनंद की परिपूर्णता व्यक्ति प्रेम में ही पाता है,
> प्रेम स्वयं अपना समतुल्य है,
> मृत्यु का क्षण आता है, करुणा के निषेध से ही।
>
> (उपेक्षिता साध्वी, 1922)

प्रेम ही विद्रोह की प्रेरक शक्ति है, इसे कुमारन आशनि ने बुद्ध की वाणी दी है। स्वामी विवेकानंद के एक संदेश में इसी का पुनर्कथन मिलता है:

> "तुम ईश्वर की खोज में कहाँ भटक रहे हो, जबकि वह तुम्हारे सामने प्रत्येक व्यक्ति में विद्यमान है? दूसरों को स्नेह देने वाला ही ईश्वर का सेवक बनता है।"

निष्कर्ष रूप में, इस बात पर बल दिया जाना चाहिए कि भारत में आलोचनात्मक चेतना की विकास-प्रक्रिया सामाजिक सुधार-प्रयास के साथ-साथ सांस्कृतिक पुनर्जागरण की भी थी। यह एक ऐसी प्रक्रिया थी जिसने नये तत्वों का समावेश किया, नई आवश्यकताओं के अनुरूप स्वयं को ढाला और नई शब्दावली में अपनी अभिव्यक्ति का पुनर्संयोजन किया।

बोध प्रश्न 2

भारतीय शासन् को निश्चित स्वरूप देने में पाश्चात्य शिक्षा-संस्थान किस प्रकार सहायक बने?

....

....

....

22.8 सारांश

इस इकाई के अध्ययन से आपने जाना:

- किस प्रकार, मुगल साम्राज्य के संकटों के क्रम में, भारतीय जनमानस ने अपनी अस्मिता के सम्यक् बोध के लिए पारंपरिक धार्मिक स्रोतों का सहारा लिया,
- पाश्चात्य प्रभावों ने किस प्रकार भारतीय जनमानस को सुनिश्चित नई दिशाएँ दीं।
- पाश्चात्य प्रभावों के अधीन चिंतन की विविध प्रवृत्तियाँ किस प्रकार परिवर्तित हुईं।

22.9 शब्दावली

समाजशास्त्रीय अध्ययन: समस्या विशेष को सामाजिक संदर्भ से जोड़ने वाला अध्ययन-प्रयास।

दिव्यज्ञान: किसी दैवी प्रेरणा से व्यक्ति को प्राप्त होने वाला ज्ञान।

22.10 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न 1

1) देखें भाग 22.2 2) देखें भाग 22.4

बोध प्रश्न 2

देखें भाग 22.5